विक्रम संवाद

पाक्षिक आलेख सेवा/नि:शुल्क वितरण के लिए

सम्पादक

महाराजा विक्रमादित्य शोध पीठ

1, उदयन मार्ग, उज्जैन-456010

फोन : 0734-2521499, 0755-2660407

Email : mvspujjain@gmail.com
vikramadityashodhpeeth@gmail.com

Web : www.mvspujjain.com

इस अंक में

पृष्ठ क्र. 1-2

राजस्थान की लोक परम्परा में भर्तृहरि
डॉ. नीरज शर्मा

पृष्ठ क्र. 3-4

तत्कालिन समाज का प्रतिबिंब थी मुद्राएँ
रामकुमार यादव

पृष्ठ क्र. 5-6

वैश्विक परंपरा में सूर्योपासना और उसके स्थल
राजेश्वर त्रिवेदी

पृष्ठ क्र. 7

प्राचीन भारत की सैन्य परंपरा
राजबहादुर शर्मा

पृष्ठ क्र. 8

पाश्चात्य सार्वभौमिकता को भारतीय चुनौती
मिथिलेश यादव

राजस्थान की लोक परम्परा में भृर्तहरि

डॉ. नीरज शर्मा

मालवानरेश उज्जैन नगर के अधिपति भर्तृहरि भारतीय इतिहास, साहित्य तथा शास्त्र तीनों में कालजयी अवदान के कारण समादृत है। महाराजा भृर्तहरि के राज्य, योग तथा तप के सम्बन्ध में अनेक लोकगीत, भजन-राग-रागिनियाँ न केवल मालवा तथा गुजरात में प्रचलित हैं अपितु राजस्थान के पूर्वोत्तर अंचल प्राचीन मत्स्यप्रदेश तथा वर्तमान में अलवर, दौसा, भरतपुर जिलों में भी भृर्तहरि लोक-परम्पराओं, लोकगीतों में सुप्रतिष्ठित हैं। अलवर राजस्थान का सिंह द्वार कहा जाता है जिसमें सरिस्का अभयारण्य प्राचीन बिराटनगर की वन्य सीमाओं का स्पर्श करता है। राजस्थान में यह दृढ़ लोकमान्यता है कि उज्जैन के महाराजा भृर्तहरि ने इस घोर जंगल में तपस्या की थी। यहाँ भृर्तहरि नामक विश्वप्रसिद्ध लोकतीर्थ है जहाँ प्रतिवर्ष विशाल मेला आयोजित होता है जिसमें देश भर से लाखों नाथ सम्प्रदाय के साधु-सन्त, दर्शनार्थी, शहरीदृग्रामीण सभी अपने पूज्य लोकदेवता अथवा आचार्य-परम्परा, कुल-शिरोमणि भृर्तहरि का पावन स्मरण-दर्शन कर कृतकृत्य होते हैं। इस मेले में हरियाणा, पंजाब, दिल्ली, हिमाचल, उत्तर प्रदेश, मध्यप्रदेश, गुजरात, बिहार तथा बंगाल सभी स्थानों से लाखों की संख्या में भक्त एकत्रित होते हैं। उज्जैन के महाराजा विक्रमादित्य यद्यपि प्राचीन लोककथाओं के नायक रहे हैं किन्तु इनके अग्रज भृर्तहरि जिन्हें अलवर की आंचलिक भाषा में भरथरी कहते हैं। राजस्थान की समकालीन लोक-परम्परा में लोकदेव के सर्वोच्च अभिमण्डित शिखर पर प्रतिष्ठित हैं। अलवर में सन् 1916 में हरिकीर्तन-समाज की स्थापना हुई जो कालान्तर में राजर्षि अभय समाज के नाम से विख्यात हुआ। राजर्षि अभय समाज शहर के लब्धप्रतिष्ठ व्यवसायियों, कार्मिकों, सामाजिकों, कला-प्रेमियों का संगठन है जिसमें वे पारसी थियेटर शैली में प्रतिवर्ष रामकथा तथा भृर्तहरि नाटक का मंचन करते हैं। यह आयोजन प्रतिवर्ष दशहरा, दीवाली के मध्य चलता है। विजयादशमी से दीपावली पूर्व तक भृर्तहरि नाटक का आयोजन होता है। भृर्तहरि की प्रचलित लोककथा, नाथसम्प्रदाय की मान्यताओं, भृर्तहरि के शतकत्रय के आधार पर पू रात्रि पर्यन्त चलने वाले भव्य-दिव्य नाटक का आयोजन होता है। सिनेमा के दौर में जहाँ थियेटर अत्यन्त विपन्नदशा को प्राप्त हो गया है वहीं भृर्तहरि नाटक में प्रतिवर्ष पूरे सत्रह आयोजन लोग दूर-दराज से आकर टिकट खरीदकर पूरी रात्रि एकटक देखते हैं। 3500 लोगों के बैठने की व्यवस्था है और सीटें भरने के बाद भी दर्शक पूरी रात खड़े-खड़े भी नाटक देखते हैं। भृर्तहरि का यह कथानक रंगमंच की पारसी-शैली में देश में एकमात्र जीवन्त आयोजन, अभय समाज की पहचान बन चुका है। विगत 56 वर्षों से अनवरत यही नाटक प्रतिवर्ष प्रतिरात्रि आयोजित हो रहा है। सभी अभिनेता कलाकार नि:शुल्क अपनी सेवायें प्रदान करते हैं तथा संग्रहीत धन मंच-सज्जा, आयोजन तथा लोकोपकारी कार्यों में ही व्यय होता है। राजर्षि अभय समाज, अलवर द्वारा सन् 2007 में भृर्तहरि नाटक की स्वर्ण जयन्ती धूमधाम से मनाई गयी तथा 'तपस्या' के नाम से स्मारिका का भी प्रकाशन किया गया। उल्लेखनीय है कि राजस्थान के पूर्व राज्यपाल कल्याण दत्त शर्मा ने स्वयं सेवक के रूप में अपनी सेवायें इस नाटक में दी थीं। भृर्तहरि नामक विश्रुत लोकतीर्थ राज्य की राजधानी जयपुर से उ.पू. दिशा में राज्यमार्ग पर 110 कि.मी. तथा अलवर जिला मुख्यालय से 30 कि.मी. जयपुर की ओर धानागाजी तहसील में सरिस्का जंगल में स्थित है। अरावली की सुरम्य उपत्यकाओं में भृर्तहरि के तपः प्रभाव से निरन्तर प्रवाहित जलस्रोत के निकट, भृर्तहरि का समाधि स्थान तथा कालान्तर में निर्मित मन्दिर है जिसमें शताब्दियों से निरन्तर ज्योति जल रही है। यहीं एक प्राचीन जागृत धूणा भी है। यह विश्वास है कि अमरफल खाने के बाद भृर्तहरि अमर हो गये तथा योगी के रूप में भ्रमण करते

हुये यहाँ आये तथा यहीं पर उन्होंने तप किया। भर्तृहरि अमर हैं तथा अब भी किसी न किसी रूप में यहाँ विद्यमान रहते हैं। यहाँ विभिन्न सम्प्रदायमतावलम्बी भक्त–श्रेष्ठियों, समाजजनों द्वारा अनेकों धर्मशालायें बनवाई गयीं तथा सुविधा स्थान बनाये गये हैं। प्रतिवर्ष भाद्रपद माह में यहाँ विशाल मेले का आयोजन होता है जिसमें लाखों–लाख भक्तों, साधु–सन्तों का जमघट रहता है। कई भक्त तो कई दिन, सप्ताह, महीनों से दण्डवत् प्रणाम की मुद्रा में यात्रा करते हुये भाद्रपद मेले में भर्तृहरि–धाम पहुँचते हैं। यहाँ मेले में सैंकड़ों तान्त्रिक, मान्त्रिक, सपेरे, नाथसम्प्रदाय के संन्यासियों का कालक्षेप होता है। मेले में समकालीन राजस्थान के आंचलिक लोकरंग तथा लोकसंस्कृति का भरपूर दर्शन होता है। इस मेले में सहभागी होकर भरथरी बाबा के दर्शन करना महान् सौभाग्य का विषय समझा जाता है। समकालीन राजस्थानी लोकगीतों–भजनों में मेला देखने जाने तथा बाबा भर्तृहरि के दर्शन की परस्पर प्रेरणा प्रदान की गयी है। जन–जीवन के विभिन्न अवसरों पर भर्तृहरि–तीर्थ की यात्रा भावी अनिष्टों का निवारण तथा संकल्पित कार्यों एवं आयोजनों की निर्विघ्न पूर्णता का परिचायक समझी जाती है। भर्तृहरि के साथ–साथ सरिस्का वन्य क्षेत्र के सघन भाग में स्थित पाण्डुपोल की भी यात्रा भक्तजन प्रायः करते हैं। पाण्डुपोल पाण्डवों के वनवास का साक्षी तथा प्राचीन विराटनगर के सीमान्त क्षेत्र में स्थित है। यहाँ लेटे हुये हनुमानजी की प्रतिमा है जिन्होंने भीम का अभिमान खण्डित कर उसे विजय का आशीर्वाद प्रदान किया था। भर्तृहरि मत्स्यांचल के लोक–जीवन में आस्था तथा विश्वास के सबसे बड़े केन्द्र हैं। खेती–काश्तकारी, मकान, दुकान, फसल बुवाई, कटाई, बेचान, शादी–ब्याह, जच्चा–बच्चा, जात–जडूले, कुआँ, बावड़ी, गाड़ी, घोड़े, नौकरी–धन्धा, हारी–बीमारी, अकाल–सुकाल आदि जन–जीवन के सभी हर्ष तथा विषाद के अवसरों पर लोक संवेदना को सर्वाधिक आधार प्रदान करने वाले जनगण मंगलदायक बाबा भर्तृहरि लोकमानस को ऊर्जा व प्रेरणा प्रदान करते हैं। सिनेमा तथा टेलीविजन के आगमन से पूर्व लोकरंजन तथा लोकशिक्षण का कार्य लोककथाओं के ऐतिहासिक गौरवपूर्ण तथा प्रेरणादायक प्रसंगों द्वारा भजनों–गीतों तथा ख्यालों के माध्यम से होता था। सरस जीवन का आतृप्ति आकांक्षित भोग तथा तदुपरान्त भोग की निस्सारता, नश्वरता, नश्वरता की घोषणा के साथ वैराग्य की उज्ज्वल पताका फहराने वाले, संसार को कर्तव्य–अकर्तव्य का बोध कराने वाले कालजयी चरित्र ही ऐसी लोककथाओं के नायक हो सकते हैं। भर्तृहरि लोकनायक के रूप में ही नहीं राजस्थान के पूर्वोत्तर सम्भाग में लोकदेवता के रूप में जन–जन की श्रद्धा और समर्पण हेतु भूत बन गये। ख्याल तथा ख्यात के रूप में गोपीचन्द्र–भरथरी के किस्से जोगियों द्वारा ग्रामीण सान्ध्य–गोष्ठियों में सदियों से सुनाये जाते रहे हैं। जयपुर की प्रख्यात तमाशा–शैली में भी यह कथानक होली के अवसर पर फाल्गुन की बयार में खेला जाता रहा है। भर्तृहरि का कथानक किस्सा–शैली में खूब लोकप्रिय है। एक कथा में पँवारवंशी उज्जयिनी नरेश भर्तृहरि का गन्धर्वसेन के यहाँ जन्म हुआ, जन्म के समय ज्योतिषी द्वारा नामकरण के साथ ही बालक के महान् योगी होने की घोषणा की जाती है। रानी द्वारा अनुनय करने पर ज्योतिषी ने श्वेत अश्व पर उत्तर–दिशा में शिकार करने पर योग धारण की घोषणा की। सत्रह वर्ष की आयु में पिंगला से विवाह हुआ। एक बार पिंगला द्वारा बहुत रोके जाने पर भी राजा शिकार के लिये उत्तरदिशा में गया। सौ हरिणियों के मध्य एकमात्र मृग को राजा ने मार दिया। राजस्थानी बोलियों में संवादात्मक शैली में ये संवाद अत्यन्त मार्मिक हैं। मृग ने मरते समय अपनी अन्तिम इच्छा व्यक्त करते हुये अपना नश्वर शरीर परोपकारार्थ समर्पित किया। अपना कृष्णचर्म गोरखनाथ तपस्वी को धूणे पर बिछाने, पैर युद्ध में दौड़ने वाले वीर को, सींग अलख जगाने वाले साधु को तथा आँखें काजल–सुरमा बनाने के लिये रानी पिंगला को देने की याचना की। मृग की मृत्यु के बाद अनेक मृगियों के प्राणत्याग दिये जाने पर राजा को अत्यन्त पश्चाताप होता है। वह हरिण के चारों पैर बाँधकर उसे घोड़े की पीठ पर लादकर चलने लगा। मार्ग में गोरखनाथ से भेंट हुई, गोरखनाथ ने भभूत छिड़ककर मृग को जीवित किया तथा भरथरी के अत्यन्त आग्रह के कारण उसे शिष्यत्व प्रदान किया। गुरु आज्ञानुसार भर्तृहरि ने पिंगला को माता का सम्बोधन देकर भिक्षा की याचना की। लोक–कथा में संगीत वाद्यों के साथ ये सभी संवाद अत्यन्त हृदयावर्जक प्रतीत होते हैं। अन्य कथानक में राजा ने मृग की मृत्यु के बाद अनेक मृगियों की मृत्यु देखकर उनके आत्यन्तिक प्रेम को जानकर, अपने प्रति पिंगला के प्रेम का परीक्षण करने का विचार किया। मृग के रुधिर में अपना वस्त्र रंजित कर सेवक के द्वारा पिंगला को अपनी मृत्यु का सन्देश भेजा। पिंगला राजा की भावभूमि समझकर स्वयं को स्वाहा कर देती है। वन में एक शिकारी के वृत्तान्त को देखकर राजा को पिंगला का स्मरण हुआ तथा राजा ने लौटकर चिता के पास अत्यन्त विलाप किया। गोरखनाथ द्वारा राजा को वैराग्य दिलाया गया। अन्य प्रसिद्ध कथानक अमरफल वाला है जो किस्सा–ख्याल में खूब गाया जाता है।

तत्कालिन समाज का प्रतिबिंब थी मुद्राएँ

रामकुमार यादव

प्राचीन मालवा में विभिन्न धातुओं से निर्मित मुद्राएँ व्यापार–व्यवसाय के निमित्त ही निर्मित नहीं की जाती थीं, वरन् इन मुद्राओं से तत्कालीन समाज की सामाजिक, आर्थिक वा धार्मिक विश्वासों पर आधारित कला परम्परा ज्ञात होती है। कुमारस्वामी के मत में शिल्पी द्वारा मुद्राएँ उसी अनुपात में निर्मित की जाती थीं, जितनी उनकी आवश्यकता प्रतीत होती थीं। मुद्रा निर्माता या कलाकार किसी वणिक् श्रेणी या राज्यान्तर्गत मुद्रा–निर्माण करता था। मुद्रा निर्माण के पश्चात् चिन्हांकन कार्य चित्रकला के समकक्ष सूक्ष्म था। मुद्रा–निर्माण व चिन्हांकनकर्ता कलाकार को अथक परिश्रम व लगन के साथ सीमित आकार में चिन्ह आलेखन का कार्य करना पड़ता था। महावग्ग में उपालि का उल्लेख है कि चिन्हांकन के कारण उपालि की आँख खराब हो जाने की संभावना है। चिन्हित मुद्राएँ विभिन्न आकार–प्रकार की मिलती हैं, यथा लम्बाकार, चिपटी, चतुर्भुज, चौकोर, गोलाकार, पंच या षट्कोण। मुद्रा निर्माण की तीन प्रणालियाँ 1. पत्तर काटकर, 2. साँचे में ढालकर और 3. ठप्पे से चिन्हांकित ज्ञात होती है। मुद्रा निर्माण के प्रारंभिक काल में मुद्राओं की बनावट भद्दी दृष्टियत होती है। ये मुद्राएं चौड़े, पतले तथा बड़े आकार की थी। प्रमुखतः चिन्हांकन पर ध्यान दिया जाता था, जिनका मुख्य ध्येय व्यापार विनिमय था। तत्कालीन जनमानस की भावनाओं तथा विश्वासों के अनुरूप चिन्हों को ध्यान में रखकर अंकित किया गया होगा। पूर्व कालीन परम्परा तथा शैलाश्रय चित्रों, ताम्राश्मीय मृण्पात्रों मुतियों पर आधारित प्रतीकात्मक चिन्हों का समावेश इनमें किया गया। प्रारंभिक मुद्राओं जैसे रजत–ताम्र आहत पर कई प्रकार के चिन्ह अंकित मिलते हैं। इनमें प्रकृति के विभिन्न स्वरूपों में पूजित थे।

मुद्राओं पर तारिका, एक से लेकर चार लघ्वाकार सूर्यकृतियाँ, बिन्दु युक्त सूर्य वृत बिन्दु युक्त सूर्य , छः किरणों से लेकर सोलह किरणों तक सीधी व घुमावदार किरणों का बहुत ही स्पष्ट अंकन है। यह चिन्ह मुद्राओं पर सर्वाधिक रूप में अंकित है। कलाकार ने इस चिन्ह को बड़ी दक्षता से उकेरा है। सूर्य से उर्जा, प्रकाश व कृषि कार्यों के उत्पादन में सहायता मिलती थी। चन्द्र का उर्वरता से सम्बन्ध था। मानव का विश्वास था कि मेरू तथा वृक्ष में देवता निवास करते हैं। ग्राम्य जीवन में प्रकृति का अत्यधिक प्रमुख स्थान मानकर कलाकार ने सूर्य, चन्द्र, मेरु तथा वानस्पतिक जगत का अधिक अंकन मुद्राओं पर किया है। षडरचक्र चिन्ह से छः ऋतुओं का आभास होता है। पशु जगत से सम्बन्धित चिन्ह इन मुद्राओं पर अंकित मिलते हैं। हस्ती को ऊर्ध्व शुंड अथवा निम्न शुंड अंकित किया गया है। सिंह व सिंह मत्स्य का भी इन पर अंकन हुआ है सिंह को कहीं स्थिर व कहीं गतिशील दर्शाया गया है। वृषभ की विभिन्न आकृतियाँ जैसे बैठा हुआ, मकार युक्त, मत्स्य युक्त, कुकुद रहित खड़ा, ककुदमान खड़ा हुआ, झुका हुआ तथा गतिशील रूप में अंकित है। वृषभ कृषि उत्पादन हेतु प्रमुख साधन था। अश्व आकृति का भी विभिन्न रूपों में अंकन है। इनके पैर सरल रेखाओं द्वारा तथा गर्दन घुमावदार चित्रित हैं। श्वान का अंकन भी किया गया है। स्वान तत्कालीन मानव के आखेट में सहायक के रूप में एक साधन था। मुद्राओं पर श्वान द्वारा शश को मुँह में लिये हुए स्वाभाविक चित्रण किया गया है। मेंढक, मत्स्य व कूर्म का अंकन है। नाग का अंकन क्वचित् मुद्राओं पर किया गया है। पक्षियों में पर्वत पर अथवा दण्ड स्थित मयूर का कलात्मक चित्रण है। अन्य चिन्ह जैसे छेदित त्रिगोल, ट्रिस्केलीज, लौहशलाका, शंख, यज्ञ–यूप, अन्नागार व दाड़िम फल आदि का अंकन इन मुद्राओं पर किया गया है।

मानवीय सृष्टि–प्रकृति जन्य सृष्टि में जो भी मानव की जीविका के साधन उपलब्ध थे, उनका वह भोक्ता था। अतः मानव का भी अंकन इन मुद्राओं पर सर्व प्रथम किया गया। इन मुद्राओं पर रेखाओं द्वारा मानवांकन किया गया है। इन पर खड़ी उदरग्र भुजा विहीन पुरुषाकृति प्रायः बाँयी ओर देखते हुए अंकित है। इन पर अंकित मानवाकृतियाँ समानुपातिक नहीं है। यह अंकन कला का प्रांरभिक रूप प्रदर्शित करता है। क्रमशः इस भावना का विकास हुआ कि इस प्रकृतिजन्य सृष्टि का कोई नियन्ता या नियामक अवश्य है। इन्हीं भावनाओं के आधार पर मुद्राओं पर दण्डधारी आकृति का भी अंकन किया गया होगा। कालान्तर में उसको देवता मानकर मुद्राओं पर निम्न केशी,

ऊर्ध्व केशी दंडधारी, सम्मुख दृष्टि अथवा पार्श्व में देखते हुए अंकित किया गया है। इन ऊर्ध्व केशी आकृतियों में कहीं–कहीं दण्ड व कभी बायें या दाहिने हाथ में कमण्डल धारण किये हुए अंकित है। कुछ आकृतियों में शीश के ऊर्ध्व भाग पर कहीं सर्प फण सदृश्य चिन्ह स्पष्ट दृष्टिगत होता है। क्वचित मुद्राओं पर ऊर्ध्व हस्ता आकृतियों का भी अंकन हुआ है, जैसे वे नृत्यरत हों। इन मुद्राओं पर दो या तीन आकृतियाँ खड़ी हुई वार्ता में निमग्न दर्शायी गयी हैं। इनमें कौन सी मानव या स्त्री आकृति है, भेद करना कठिन है। केवल द्विवेणी से यह ज्ञात होता है कि यह एक स्त्री आकृति का अंकन है। इन आकृतियों का अंकन समानुपातिक है। वस्त्राभूषण स्पष्ट नहीं है। केवल एक वस्त्र शरीर पर धारण किये हुए अंकित है। सरल रेखाओं द्वारा आकृतियों का अंकन है। मुखाकृति क्वचित् गोलाई लिये हुए, तथा हाथ नीचे लटक रहे हैं। शारीरिक सौष्ठव इन आकृतियों में नहीं आ पाया है। इससे कलात्मक सौन्दर्य बोध नहीं होता।

मुद्रा निर्माण कला के द्वितीय सोपान में साँचे द्वारा ढली हुई स्वर्ण, रजत व ताम्र मुद्राएँ प्रकाश में आती है। इस युग में मुद्रा निर्माण कार्य पूर्ण रूप से राज्यान्तर्गत आ गया। कलाकार को राज्य का संरक्षण मिला। प्रमुख स्थानों पर मुद्रा निर्माण हेतु टकसालों का निर्माण हुआ। उज्जयिनी, विदिशा तथा एरण से प्राप्त अनेक मुद्राओं से इसकी पुष्टि होती है। साँचे की विधि से मुद्रा निर्माण सरल हो गया व चिह्नांकन में पूर्व पद्धति जो अधिक श्रम युक्त व दुरुह थी वह सहज हो गई। व्यापार व्यवसाय की उन्नति एवं आर्थिक समृद्धि के कारण मुद्राओं की माँग बढ़ गई। इस नवीन विधि से सर्व प्रथम साँचों पर चिन्ह अंकित कर उनके द्वारा मुद्राओं पर चिन्ह अंकित होने लगे। उज्जयिनी से क्वचित् ऐसी मुद्राएँ भी प्राप्त हुई हैं जो ढली रजत–आहत मुद्राएँ हैं, जिन पर कलाकार द्वारा चिन्हांकन किया गया है। इससे यह भी ज्ञात होता है कि कलाकार पूर्व–पद्धति से चिन्हांकन कार्य करते रहे। मुद्रा निर्माण की इस नवीन विधा से कलाकार ने नव–नवीन चिह्नों का प्रयोग किया। इन मुद्राओं पर प्रकृति जगत से लिये गये चिह्नों का प्रतीकात्मक रूप में समावेश किया गया। सूर्य का अंकन बहुत कम किया गया व आहत मुद्राओं के समान है। सम्भवतः इस काल में सूर्य का मानवीकरण हो गया था। इन मुद्राओं पर 35 प्रकार के चक्रों का अंकन विभिन्न रूपों में किया गया।

यथा षड़र चक्र, अष्टार चक्र तथा द्वादश चक्र। चन्द्र मेरु 11 विभिन्न प्रकारों में अंकित किया गया है। मेरु छत्र, पंचकूट स्थित वृक्ष, नवकूट स्थित वृक्ष और पंचकूट स्थित एक पक्षी का भी अंकन किया गया है। वृक्षांकन के लगभग 75 विविध प्रकार अंकित हैं। वानस्पतिक जगत का अधिकाधिक चित्रण इन मुद्राओं पर किया गया है। इनमें वृक्ष की एक पत्ती से लेकर चार पत्तियों तक, केवल वृक्षांकन, रेखाओं द्वारा वृक्षांकन, वेदिका वृक्ष तीन, चार, पाँच, सात, नौ, दस, ग्यारह, तेरह तथा पन्द्रह पत्तियों युक्त अंकित है। इन वृक्षों में अश्वत्थ, वट, ताड़ वृक्ष, मकार युक्त वेदिका वृक्ष, दण्डधारित त्रिकोण युक्त वेदिका वृक्ष तथा मत्स्य–सरित युक्त वेतदका वृक्ष अंकित है। वेदिका के भी विभिन्न स्वरूप है स्वस्तिक साधारण, मकार युक्त स्वस्तिक तथा अलंकृत रूप में भी स्वस्तिक का अंकन है मकार के विभिन्न 20 प्रकार उपलब्ध है। उज्जयिनी चिन्ह साठ विभिन्न प्रकार में अंकित है। इनमें विदिशा से मिली मुद्राओं मे से एक पर उज्जयिनी चिन्ह के ऊर्ध्व गोल पर खड़ी गज आकृति, अन्य मुद्रा पर उज्जयिनी के ऊर्ध्व गोल के आस–पास पाँच मकार व बाँयीं ओर के गोल पर चार मकार अंकित हैं। मुद्राओं पर इनके विविध स्वरूप कलात्मक एवं दर्शनीय है। महेश्वर–नावड़ाटोली की मुद्रा पर उज्जयिनी चिन्ह तीन गोल मकार युक्त व एक गोल बिन्दु युक्त है। इनके कोण मध्य चन्द्र मेरु और मकार स्थित है।

मुद्रा निर्माण कला के विकास के तृतीय सोपान में क्वचित् ढली व ठप्पांकित मुद्राएँ जिन पर नगर नाम व स्वतंत्र स्थानीय शासकों के नामों का अंकन किया गया है। ये मुद्राएँ कला की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है। विविध चिन्हांकनों के अतिरिक्त इन मुद्राओं की विशेषता इन पर अंकित विविध नगरों व स्वतंत्र शासकों के नाम हैं। ये समस्त मुद्राएँ अधिकांशतः ताम्र निर्मित है। एरण से काँसे का एक ठप्पा मिला है, जिससे ठप्पांकित मुद्राओं का काल तृतीय अथवा द्वितीय शती ईसा पूर्व ज्ञात होता है। नगर नामांकित मुद्राएँ उज्जयिनी, एरण, कुरराय, भगिलाय, नंदिपुर, माहिष्मती (माहिष्मती नामांकित मुद्राओं में एक मुद्रा पुन राहत है, जिसमें मदुमित्र नामक शासक का नाम अंकित है), तथा विदिशा से प्राप्त हुई हैं। उज्जयिनी क्षेत्र के स्वतंत्र शासक रथि–मदन, सवितृ, राज्ञो दतस, भूमि मित्र, भानुमित्र व महीमित्र, माहिष्मती क्षेत्र के हाथुदेवस (हस्ति देव), हाथुदकी, मदुमित्र और कूकूदत, एरण क्षेत्र के धर्मपाल, इन्द्रगुप्त, व रामभद्र, विदिशा क्षेत्र के वसुज्येष्ठ, शिवगुप्त, राज्ञो शिवगुप्त तथा राज्ञो शिवमित्र, सीहोर जिलान्तर्गत नान्दनेर ग्राम से दाम भद्र, नारायण मित्र, राज्ञो नारायण मित्र, राज्ञो भानुमित्र, वज्रमित्र या वसुमित्र, रविमित्र? हस्ति देव की प्राप्त मुद्राओं से इनके नाम प्रकाश में आये हैं। उज्जयिनी मुद्राओं पर अष्टार चक्र, उज्जयिनी चिन्ह एक गोल, द्विगोल, मकार युक्त गोल, निम्न शुंड व ऊर्ध्व शुंड हस्ति, वृषभ सामने देखता हुआ, पंचांगुलांक तथा देवी आकृति अंकित है। एरण मुद्राओं पर षड़र चक्र, वेदिका वृक्ष, अलकृंत तोरण द्वार, वृषभ तथा अश्वांकन है। कुरराय नामक मुद्राओं पर अर्द्धवृत्त मकार युक्त, उज्जयिनी चिन्ह, वृक्ष–पत्र, वेदिका वृक्ष, दण्ड धारित–त्रिकोण, एवं यज्ञ कुण्ड अंकित है। भागिलाय नामक मुद्राओं पर सूर्य, मकार, स्वास्तिक वेदिका वृक्ष (वट वृक्ष), कुलाँच भरता हुआ वृषभ, एक मुद्रा पर सिर नीचे झुका हुआ व पूँछ ऊपर उठाये हुए दौड़ती हुई वृषभाकृति अंकित है। सर्प अनेक फणों से युक्त, मत्स्य सरित, मत्स्य–कूर्म–सरित तथा कमल (अष्ट दल) विशेष रूप से अंकित है। माहिष्मती नामांकित मुद्राओं पर चन्द्र मेरु, बिन्दु अर्धचन्द्र युक्त, वेदिका वृक्ष, उज्जयिनी चिन्ह, यज्ञ–कुण्ड, मत्स्य–सरित चिन्ह,प्रथम बार बतख का अंकन हुआ है।

वैश्विक परंपरा में सूर्योपासना और उसके स्थल

राजेश्वर त्रिवेदी

सूर्य ब्रह्मांड की सप्त महाशक्तियों के अक्षय पुंज है। सूर्य के बिना सृष्टि का सृजन तथा संचालन संभव नहीं है। आनादिकाल से पृथ्वी के परिचालन में किसी अदृश्य सर्व शक्तिमान सत्ता की शाश्वत भूमिका पर अटूट विश्वास करने वाली भिन्न–भिन्न सभ्यता संस्कृति तथा विभिन्न धर्मावलंबियों ने सूर्य के माहात्म्य को स्वीकार किया है। विश्व की प्राचीन सभ्यताओं द्वारा सूर्य उपासना की सैंकड़ों प्रमाण मिले हैं। जबकि वर्तमान काल में भारत के विभिन्न प्रांतों सहित कई देशों में सूर्य की उपासना अलग–अलग तरीके से की जाती है। प्रतिदिन उगते सूर्य की पूजा करने की प्रथा जापान में सदियों से चली आ रही है। चीन में मध्य दिवस को हर रोज सूर्य का स्वागत तथा विदाई जलता अंगारा फेंककर करने का रिवाज है। उत्तर पूर्व चीन में उत्खनन के दौरान मिली सूर्य की अनेक मूर्तियाँ यह प्रमाणित करती है कि यहाँ सूर्य की उपासना की परंपरा प्राचीन काल से ही है। ईरान में भी सूर्य पूजन की प्रथा प्रचलित है। इटली के निवासी बगैर भोजन के एक माह तक पहाड़ों पर लेटकर सूर्य पूजन करते हैं। दक्षिण अफ्रीका के सुदूर जंगलों में रहने वाली आदि जनजाति के लोग अशुद्धियों को दूर करने के निमित पूरे दिन उपवास रखकर सूर्य को पृथ्वी पर बुलाने के लिए आरजू–मिन्नत करते हैं। उत्तर अमेरिका में सूर्य की प्राचीनकाल से ही पूजा की जाती रही है। मैक्सिको के लोग जीवन में समस्त दुखों से मुक्ति हेतु उपवास रखकर सूर्य की पूजा करते हैं। सूर्योपासना की यह विश्व परंपरा अलग–अलग होने के बावजूद अपने अंदर लोक कल्याण की पावन भावना समेटे हुए हैं। जो न केवल भेदभाव को मिटाने में मददगार साबित हो रही है बल्कि विविधता में एकता का प्रतीक बनकर सामने आयी है। सूर्य की उपासना दुनिया के कई राष्ट्रों में विभिन्न नाम, मान्यता और उनकी अपनी परंपराओं के अनुसार होती है। प्राचीन इतिहास को खंगालें, तो हिंदू, बौद्ध धर्म के अलावा यूनान, मिस्र, एजटेक (सेंट्रल मैक्सिको), चीन, तुर्की और इंका (दक्षिण अमेरिका) सभ्यता में भी सूर्य की पूजा होती थी। वर्तमान में पेरू, उरुग्वे, अर्जेंटीना, जापान आदि देश सूर्य को अपना राष्ट्रीय प्रतीक के रूप में उपयोग करते हैं। वेद की ऋचाओं में ओम् सूर्यो ज्योतिर्ज्योतिरू सूयरू स्वाहा कह कर सूर्य की आराधना की गई है। मित्र, मिहिर, सविता आदि शब्द सूर्य के पर्याय हैं।

सूर्य को समर्पित सूर्य मदिरों का निर्माण विश्व की लगभग हर सभ्यता व संस्कृतियों में हुआ है। सूर्य का हमारे जीवन में कितना महत्व है, यह बात ग्रंथों में ही नहीं, बल्कि विज्ञान ने भी साबित की है। सूर्य यानी भगवान सूर्य भारत के नौ ग्रहों में से एक हैं, जीवन में इसके महत्व को समझते हुए ही शायद सूर्य मंदिरों का निर्माण हुआ। भारत सहित दुनिया के देश इस बात के प्रमाण है। भारत में कोणार्क, मोढेरा और कश्मीर सहित अनेक स्थानों पर सूर्य मंदिरों का निर्माण हुआ है। यहाँ यदि हम भारतीय संदर्भों में सूर्य मंदिरों की बात करें तो पायेंगे कि बहुत ही वृहद स्तर पर इन सूर्य मंदिरों का निर्माण हर काल में होता रहा है। ओडिशा का कोणार्क सूर्य मंदिर एक विश्व धरोहर है। ऐसा माना जाता है कि यहाँ सूर्य के साक्षात दर्शन होते हैं। अद्वितीय मूर्तिकला और इससे जुड़ी कहानियाँ इस मंदिर को खास बनाती हैं। यह विशाल मंदिर एक बड़े से रथ और पत्थर के पहियों के आकार में बनाया गया है। यहाँ सूर्योदय की पहली किरण मंदिर के मुख्य प्रवेश द्वार से टकराती है।

मोढेरा का सूर्य मंदिर गुजरात के मेहसाणा जिले में पुष्पावती नदी के किनारे बना है। मंदिर परिसर तीन भाग में बटा हैं, जिसमें गुधा मण्डप, सभा मण्डप और कुण्ड है। इतना ही नहीं, इसका सभा मण्डप 52 खंभों पर खड़ा हुआ है, जो साल के 52 सप्ताह को दर्शाता है। इसकी दीवारों पर पंच तत्वों को देखा जा सकता है। वहीं, अलग–अलग हिस्सों पर सूर्य की कई आकृतियाँ देखी जा सकती हैं। आठवीं सदी में कश्मीर में मार्तंड मंदिर का निर्माण कर्कोटा वंश के राजा ललितादित्य मुक्तापिदा ने करवाया था। कश्मीरी वास्तुशिल्प कौशल का एक जीता–जागता उदाहरण है यह सूर्य मंदिर। हालाँकि इसे 15वीं शताब्दी में शासक सिकंदर बुतशिकन ने नष्ट कर दिया था। पुरातत्वविदों ने मंदिर को गंधार, गुप्त, ग्रीक, चीनी, रोमन, सीरियाई वास्तुकला की मिश्रित शैली का एक श्रेष्ठ उदाहरण है। उत्तराखंड के पहाड़ों में कट्यूरी राजा काटरमल्ला ने इस मंदिर का निर्माण 9वीं सदी में करवाया था। चट्टानों के बड़े और भारी चौकोर पत्थरों से बना यह मंदिर उत्तराखंड की कत्यूरी वास्तुकला शैली का एक महत्वपूर्ण नमूना है।

आज भी दुनिया के अनेक देशों में सूर्य उपासना से सम्बन्धित अनेक प्रमाण लगातार मिल रहे हैं। विगत दिनों एक पुरातात्विक खनन के दौरान मिस्र के रेगिस्तान में 4500 साल पुराना सूर्य मंदिर मिला है। कुछ पुरातत्वविद मिस्र में राजधानी काहिरा से दक्षिण की तरफ मौजूद शहर अबु गोराब के रेगिस्तान में खनन कर रहे थे तभी अचानक उन्हें ऐसा प्राचीन मंदिर मिला जिसे देखकर सब हैरान रह गए। यह मंदिर सूर्य देव का है जो कि पिछले 4500 सालों से रेगिस्तान में दबा था।

मिस्र के पुरातत्वविदों का मानना है कि यह पिछले दशक की सबसे बड़ी खोज है। इस सूर्य मंदिर को मिस्र के फैरोह ने बनावाया था। मिस्र में अब तक दो प्राचीन सूर्य मंदिर मिल चुके हैं। वॉरसॉ स्थित एकेडमी ऑफ साइंसेज में इजिप्टोलॉजी के असिसटेंट प्रोफेसर डॉ. मासिमिलानो नुजोलो के अनुसार 'हमने ऐसी प्राचीन वस्तुओं की खोज के लिए काफी समय दिया है। लेकिन जब ऐसा कुछ मिलता है जो पूरी सभ्यता, संस्कृति और उस समय के निर्माणकला विज्ञान को दर्शाता है तो हैरानी होती है। बहुत कुछ सीखने को मिलता है।' पुरातत्वविदों के अनुसार यह मंदिर पाँचवें साम्राज्य के फैरोह यानि राजा ने बनवाया था तब वो जीवित थे। इसका मकसद था कि उन्हें लोग ईश्वर का दर्जा दें। दूसरी तरफ पिरामिड्स बनवाए गए थे, जहाँ पर फैरोह के मरने के बाद उनकी कब्र बनायी जाती थी ताकि मरने के बाद वह भगवान का स्वरूप हासिल कर सकें।

मिस्र में ऐसे छह सूर्य मंदिर हैं, जो 4500 साल पहले बनवाए गए थे। उनमें से एक अभी अबु गोराब के रेगिस्तान में मिला है। मिस्र के पाँचवें साम्राज्य के फैरोह न्यूसिरी इनी ने इन मंदिरों का निर्माण कराया। अभी जो मंदिर मिला, वह भी इन्ही ने बनवाया था। न्यूसिरी इनी ने ईसापूर्व 25वीं सदी में तीस साल तक साम्राज्य किया था। जब पुरातत्वविदों ने और जाँच की तो पता चला कि मंदिर का निर्माण मिट्टी से बने ईंटों से किया गया था। जिसकी दो फीट गहरी नींव चूना पत्थरों से बनायी गयी थी। मिस्र बहुत ही प्राचीन देश है। यहाँ के पिरामिडों की प्रसिद्धि और प्राचीनता के बारे में सभी जानते हैं। ये पिरामिड प्राचीन सभ्यता के गवाह हैं। प्राचीन मिस्र नील नदी के किनारे बसा है। यह उत्तर में भूमध्य सागर, उत्तर–पूर्व में गाजा पट्टी और इसराइल, पूर्व में लाल सागर, पश्चिम में लीबिया एवं दक्षिण में सूडान से घिरा हुआ है। यहाँ का शहर इजिप्ट प्राचीन सभ्यताओं और अफ्रीका, अरब, रोमन आदि लोगों का मिलन स्थल है। यह प्राचीन विश्व का प्रमुख व्यापारिक और धार्मिक केंद्र रहा है। मिस्र के भारत से गहरे सम्बन्ध रहे हैं। यहाँ पर फराओं राजाओं का बहुत काल तक शासन रहा है। माना जाता है कि इसा भी माना जाता है इससे पहले यादवों के गजपत, भूपद, अधिपद नाम के तीन भाइयों का राज था। गजपद के अपने भाइयों से झगड़े के चलते उसने मिस्र छोड़कर अफगानिस्तान के पास एक गजपद नगर बसाया था। गजपद बहुत शक्तिशाली था।

मिस्र में सूर्य को सर्वश्रेष्ठ चिकित्सा देवता के रूप में माना जाता है। भारतीयों ने कहा है– आरोग्यं भास्करादिच्छेत। यहाँ अनेक औषधियाँ भारत से मँगायी जाती थीं। भारतीय और मिस्र की भाषाओं में बहुत से शब्द और उनके अर्थ समान है, जैसे हरी (सूर्य)– होरस, ईश्वरी–ईसिस, शिव–सेव, श्वेत–सेत, क्षत्रिय–खेत, शरद–सरदी आदि। मिस्र के पुरोहितों की वेशभूषा भारतीय पुरोहितों व पंडितों की तरह है। उनकी मूर्तियों पर भी वैष्णवी तिलक लगा हुआ मिलता है। एलोरा की गुफा और इजिप्ट की एक गुफा में पायी गयी नक्काशी और गुफा के प्रकार में आश्चर्यजनक रूप से समानता है। मिस्र के प्रसिद्ध पिरामिड वहाँ के राजाओं की एक प्रकार की कब्रें हैं। भारतीयों को इस विद्या की उत्तम जानकारी थी। उन्होंने राजा दशरथ का शव उनके पुत्र भरत के कैकेय प्रदेश से अयोध्या आने तक सुरक्षित रखा था। दुनियाभर की प्राचीन सभ्यताओं से हिन्दू धर्म का क्या कनेक्शन था? या कि संपूर्ण धरती पर हिन्दू वैदिक धर्म ने ही लोगों को सभ्य बनाने के लिए अलग–अलग क्षेत्रों में धार्मिक विचारधारा की नए नए रूप में स्थापना की थी? आज दुनियाभर की धार्मिक संस्कृति और समाज में हिन्दू धर्म की झलक देखी जा सकती है। ईसा पूर्व भारतीय संस्कृति व सभ्यता विश्व की प्राचीनतम संस्कृतियों में से एक है। मध्यप्रदेश के भीमबेटका में पाये गये 25 हजार वर्ष पुराने शैलचित्र, नर्मदा घाटी में की गई खुदाई तथा कुछ अन्य नृवंशीय एवं पुरातत्वीय प्रमाणों से यह सिद्ध हो चुका है कि भारत की भूमि आदिमानव की प्राचीनतम कर्मभूमि रही है।

सिन्धु और सरस्वती के बीच की भूमि पर ही आर्य रहते थे। इसमें आधुनिक इराक, उत्तर–पूर्वी सीरिया, दक्षिण–पूर्वी तुर्की तथा ईरान के कुजेस्तान प्रांत के क्षेत्र शामिल हैं। इस क्षेत्र में ही सुमेर, अक्कदी, बेबिलोन तथा असीरिया की सभ्यताएँ अस्तित्व में थीं।

प्राचीन भारत की सैन्य परंपरा

राजबहादुर शर्मा

भारतीय संस्कृति विश्व की सबसे पुरानी सामाजिक संस्कृति है। वायुपुराण में भरत की कहानी आती है जो कि आधुनिक इतिहासकारों की समझ से परे है। पिछले हजारों वर्षों में स्थानीय और विदेशियों द्वारा बड़ी संख्या में रचे गए साहित्य, पुरातात्विक प्रमाणों और मजबूत मौखिक तथा संपुष्ट मौखिक परंपराओं से हमारी प्राचीनता और हमारी सभ्यता की श्रेष्ठता साबित होती है। हमारी सभ्यता में आध्यात्मिकता से लेकर दर्शन, राजनीति, अर्थशास्त्र, कला, विज्ञान, तकनीकी, उद्योग, प्रशासन और यहाँ तक कि युद्ध और शांति तक मानव जीवन के हरेक आयामों का विकास हुआ था। यह सब कुछ केवल तभी संभव है, जब लंबे समय तक देश में शांति रही हो जोकि अपने लोगों और अपनी भौगोलिक सीमाओं की सुरक्षा के बिना संभव नहीं है। हमारी सभ्यता का प्रारंभ मानव सभ्यता के इतिहास से होता है। आधुनिक इतिहासकारों द्वारा स्वीकृत सिंधु घाटी सभ्यता और वैदिक काल ईसा के हजारों वर्ष पुराने हैं। इसके बाद उपनिषदों का काल आता है, फिर रामायण और महाभारत और उसके बाद पांड्यन, मौर्य, अशोक, सातवाहन और अंततरू मगध का गुप्त साम्राज्य जैसे महान राज्य हुए। इस दौरान देश में विभिन्न कालखंडों में विभिन्न स्थानों पर महान गणतंत्र राज्यों का भी उदय हुआ। भारतीय सभ्यता की सीमाएँ इतिहास के विभिन्न कालखंडों में विशालतम अवस्था तक पहुँची और कई बार उनमें काफी संकुचन भी आया। उत्तर और दक्षिण की सीमाओं के लिए सामान्यतरू हिमालय और महासागर का सीमांकन किया जाता था, इसकी पश्चिमी सीमाएँ कैस्पियन सागर तक विस्तीर्ण रही हैं। पूरब में वर्तमान बांग्लादेश और म्यामांर तक हमारी सीमाएँ रही हैं। इस प्रकार हमारी सांस्कृतिक सीमाएँ पहली शताब्दी के अंत तक इरावाडी नदी जिसे स्थानीय भाषा में ऐरावाड्डी (इंद्र के ऐरावत हाथी के नाम पर) कहा जाता था और ऑक्सस नदी जो आज अमू दरिया के नाम से जानी जाती है, के बीच तक फैली हुई थीं। उत्तर में सागरमाथा जो कि आज माउंट एवरेस्ट के नाम से प्रसिद्ध है से लेकर श्रीलंका तक भारत ही था।

राजनीति सम्बन्धी भारतीय ग्रंथों में राज्य और राष्ट्र शब्दों की चर्चा बहुतायत में पाई जाती है। इन्हीं शब्दों का बाद में आधुनिक विद्वानों ने स्टेट और नेशन में अनुवाद कर दिया जोकि पश्चिमी मूल के शब्द हैं। राज्य के लिए स्टेट शब्द का प्रयोग तो ठीक है, परंतु राष्ट्र का अनुवाद नेशन करना ठीक नहीं है। स्वाभाविक ही है कि पचपन शताब्दियों से पुराने और एक महादेश के आकार के राज्य तथा राष्ट्र की नीतियों के बारे में यथातथ्य विवरण दे पाना संभव नहीं है। प्रमाणों से पता चलता है प्राचीन भारत में राज्य का काम विदेशी आक्रमणों से लोगों की रक्षा करने तक सीमित था। आंतरिक कानून व्यवस्था का पालन पारंपरिक नियमों के प्रति श्रद्धा पैदा करके करवाया जाता था। वैदिक राजा धर्मपति यानी धर्म अर्थात् कानून के पालक हुआ करते थे। हालाँकि वैदिक काल से मौर्य काल के बीच में राज्य के अधिकार तथा कर्तव्यों में काफी वृद्धि हुई। साम्राज्य युग के प्रारंभ होते–होते राज्य के कर्तव्यों में सामाजिक, आर्थिक और आध्यात्मिक सभी आयाम शामिल हो गए।

सामाजिक व्यवस्थाओं का संवर्धन और विद्वानों, कलाकारों, शिल्पकारों के संरक्षण द्वारा शिक्षा, कला, अध्ययन को प्रोत्साहन देना भी राज्य के काम माने गए। यहाँ तक कि धर्मशालाएँ, धर्मशालाएँ, सामुदायिक भवन और अस्पताल जैसी नागरिक सुविधाएँ भी राज्य द्वारा संचालित की गईं, ताकि प्राकृतिक आपदाओं के समय किसी प्रकार का दबाव समाज पर न रहे। अन्य सभी सभ्यताओं की ही भांति यहाँ भी समाज के शारीरिक बल को संरक्षण, संवर्धन और उपयोग करना एक जीवंत राज्य अनिवार्य हिस्सा था। एक ओर विजेताओं ने न केवल अपनी वीरता प्रदर्शित करने तथा गौरव बढ़ाने के लिए, बल्कि राज्य का धन और संसाधन बढ़ाने के लिए युद्ध लड़े, दूसरी ओर विजितों ने अपने पूर्वजों के सम्मान की रक्षा और अपने देवताओं के मंदिरों की रक्षा के लिए अपनी आहूति देकर ख्याति अर्जित की।

अर्थशास्त्र में तीन प्रकार के सैन्य अभियानों का वर्णन मिलता है जिन्हें सामान्यतः दिग्विजय या विश्वविजय कहा जाता था। ये हैं धर्मविजय यानी धर्म के लिए अभियान, लोभविजय यानी धन के लिए अभियान और असुरविजय यानी राक्षसी उद्देश्यों के लिए अभियान। इनमें से सबसे श्रेष्ठ धर्मविजय, उससे कम लोभविजय तथ सबसे निकृष्ट असुरविजय को माना जाता था। धर्मविजय में विजित राजा को बाध्य किया जाता था कि वह विजेता को सम्मान और न्यायोचित कर प्रदान करे। लोभविजय में विजित राजा को भारी मात्रा में धन अथवा अपने राज्य का एक भूभाग या दोनों ही देना होता था। असुरविजय में पराजित राज्य का पूरी तरह नाश कर दिया जाता था। अन्य देशों जहाँ मात्स्य न्याय यानी बड़ी मछली छोटी मछली को खा जाती है, का सिद्धांत प्रचलित था, भारत में इसके विपरीत हमारे प्राचीन मनीषियों का कहना था कि कमजोर राज्य शांति को बनाए रखें और जो मजबूत राज्य हैं, वे युद्ध करें।

काल के प्रवाह में समाज में क्षत्रिय नामक योद्धा जाति का विकास हुआ जिसकी जीविका का साधन ही युद्ध और शासन करना था। अधिकांश स्मृतियों में राजा को युद्ध से बचने की ही राय दी गई है। अशोक एक महान सम्राट हुआ जिसने गौरव के लिए किए जाने वाले युद्ध की परंपरा को तोड़ते हुए धर्मविजय को एक नई परिभाषा प्रदान की। इसके अंतर्गत धर्म का प्रसार करना ही धर्म के लिए युद्ध माना गया।

पुस्तक चर्चा/मिथिलेश यादव

पाश्चात्य सार्वभौमिकता को भारतीय चुनौती

इस पुस्तक में चिंतक और विचारक राजीव मल्होत्रा ने विभिन्नताओं के सीधे और सच्चे मुकाबले में आने वाली चुनौतियों के विषय में अपना मत बहुत ही दार्शनिक व तार्किक रूप में प्रकट किया है। वे ऐसा भारत के प्रति किये जाने वाले अवलोकन को उलट कर अवलोकन करने वाले की तरह स्थापित करके और पश्चिम को धार्मिक दृष्टिकोण से देख कर करते है। वे विशिष्ट रूप से दर्शाते है की जहाँ अद्वितीय ऐतिहासिक रहस्योद्घाटन पश्चिम मतों का आधार है वहीं भारतीय धर्म शरीर में यहीं और इसी समय आत्मबोध प्राप्त करने पर बल देते है। वे भारतीय धर्म की तत्व मीमांसा को थमने वाली अभिन्न एकता की और भी इंगित करते है और इसकी तुलना कृत्रिम एकता वाले पश्चिमी विचार और इतिहास से करते है। विभिन्न एक विदुषी एवं आकर्षक पुस्तक है जो प्रचलित न्यूनकारी रूपान्तकरणों की समीक्षा करती है और भिन्नता के प्रति पश्चिम की व्यग्रता तथा व्यस्था से असाधारण आसक्ति का विश्लेषण करते है। या विविध सभ्यता के विश्वदर्शन की वकालत कर पश्चिमी सार्वभौमिका के दावे का खंडन करके समाप्त होती है।

लेखक के अनुसार 'मैं केवल भारतीय धार्मिक परिदृश्य का उपयोग करते हुए उस विश्लेषणात्मक अवलोकन को उलट देना चाहता हूँ जो प्रायः पश्चिम से पूर्व की ओर केन्द्रित होता है, और अनजाने में पश्चिम को विशेषाधिकार प्रदान करता है। इसे उलटने से पश्चिमी समस्याओं का मूल्यांकन एक विशिष्ट तरीके से सम्भव हुआ है, जिसके द्वारा उसके कुछ अनदेखे पहलू उजागर हुए हैं। इससे यह देखने में आया है कि भारतीय धार्मिक संस्कृतियाँ कई समस्याओं को, जिनका सामना आज विश्व कर रहा है, सुलझाने और कम करने कैसे योगदान दे सकती हैं। धर्म को भारतीय आध्यात्मिक परम्पराओं के परिवार से उत्पन्न हुए शब्द की तरह इंगित किया जाता है, जो आज हिन्दू, बौद्ध, जैन और सिख धर्म के रूप में अभिव्यक्त हैं। मैं यह दिखाऊँगा कि धर्म के विभिन्न परिदृश्य और प्रचलित साधनाएँ आध्यात्मिक स्तर पर अन्तर्निहित अभिन्न एकता को प्रदर्शित करते हैं जो उनमें विद्यमान खुलेपन और गैर–आक्रामकता को सुदृढ़ करती है और उनका आधार भी है। 'धर्म' को परिभाषित करना आसान नहीं है और इस पुस्तक का यथेष्ट भाग इसके कुछ पहलुओं को समझाने के लिए समर्पित किया गया है। भारत को केवल प्राचीन और नवीन के एक पुलिन्दे की तरह नहीं देखा जा सकता, जिसे अप्रत्याशित और असहज रूप से बिना किसी प्राकृतिक एकता के कृत्रिम रूप से जोड़ दिया गया हो। न तो भारत पश्चिमी आधुनिक जीवनशैली के कुछ हिस्सों का केवल

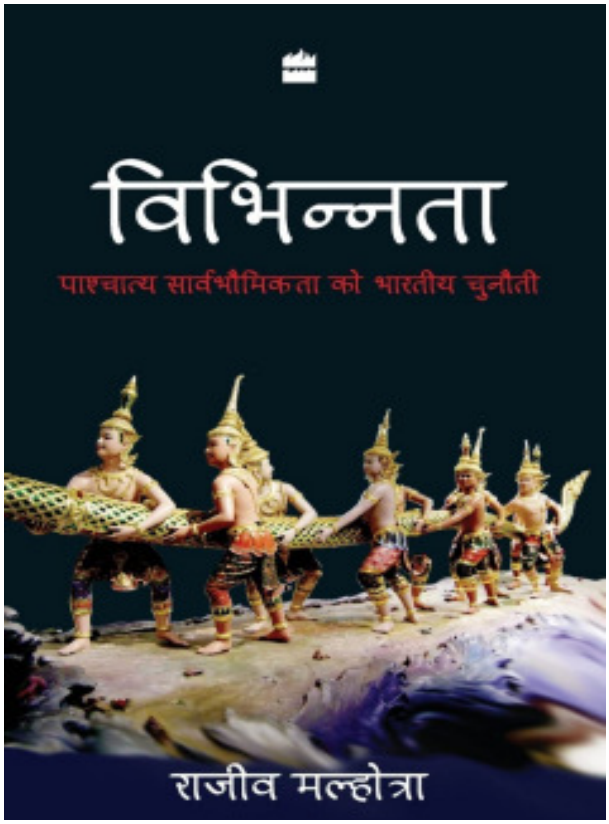

एक विचित्र संग्रह मात्र है, और न ही यह वैश्विक पूँजीवादी व्यवस्था में एक कनिष्ठ भागीदार भारत स्वयं अपनी एक विशिष्ट एवं एकीकृत सभ्यता है, जिसकी गहन मतभेदों का समाधान करने, विभिन्न संस्कृतियों, सम्प्रदायों और दर्शनों के साथ रचनात्मक सम्बन्ध स्थापित करने तथा मानवता की कई विविध धाराओं को शांतिपूर्वक समाहित करने की क्षमता सिद्ध हो चुकी है। ये मूल्य देवत्व, ब्रह्माण्ड और मानवता विषयक विचारों पर आधारित हैं, जो पश्चिमी सभ्यता की मौलिक अवधारणाओं के विपरीत हैं। यह पुस्तक उन सिद्धान्तों और अवधारणाओं की खोज करती है। यह पुस्तक 'भारत पश्चिम से भिन्न है' के बारे में है। इसका अभिप्राय कुछ चहेती अवधारणाओं, जैसे पश्चिमी प्रतिमान सार्वभौमिक हैं, कि पूर्वधारणा और भारतीय धार्मिक परम्पराएँ भी श्वही शिक्षा देती हैं, जैसा कि यहूदी और ईसाई परम्पराएँ, को चुनौती देना हैं। जहाँ एक ओर वेद यह कहते हैं कि "सत्य एक है, उस तक पहुँचने के मार्ग अनेक, " परन्तु उन मार्गों में अन्तर नगण्य नहीं हैं।

महाराजा विक्रमादित्य शोध पीठ, स्वराज संस्थान संचालनालय, संस्कृति विभाग, मध्यप्रदेश शासन के लिए 1, उदयन मार्ग, उज्जैन-456010 से प्रसारित. सम्पादक : श्रीराम तिवारी, समन्वयक : राजेश्वर त्रिवेदी.

आलेख सेवा निःशुल्क वितरण के लिए. फोन: 0734-2521499, 0755-2660407 Email:mvspujjain@gmail.com, vikramadityashodhpeeth@gmail.com